औषधीय पौधो की व्यवसायिक खेती

भाकृअनुप
ICAR

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

Scanned by CamScanner

औषधीय पौधो की व्यवसायिक खेती

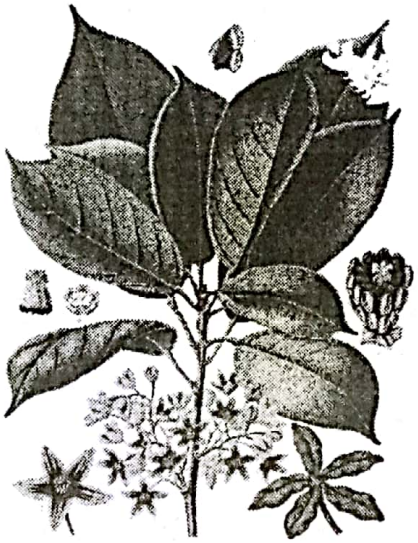

लेखक

डा0 आनन्द सिंह
कार्यक्रम समन्वयक
कृषि विज्ञान केन्द्र-II , कटिया, सीतापुर

श्री शैलेन्द्र सिंह
विषय वस्तु विशेषज्ञ(प्रसार)
कृषि विज्ञान केन्द्र-II , कटिया, सीतापुर

डा0 लारवन सिंह
वरिष्ठ वैज्ञानिक, क्षेत्रिय परियोजना निदेशालय-IV,कानपुर

प्रकाशक

कृषि विज्ञान केन्द्र-II

ग्राम कटिया, पोस्ट भानपुर वि0ख0 बिसवाँ
जनपद- सीतापुर 261145 (उ0प्र0)

Scanned by CamScanner

संदेश

डा० सञ्जय सिंह
संसद सदस्य
अध्यक्ष कृषि विज्ञान केन्द्र-II
कटिया सीतापुर

भारतवर्ष की आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति विश्व के लिए एक अमूल्य देन है। चरक, धनवन्तरि एवं सुश्रुत जैसे महाऋषियों द्वारा आयुर्वेद के क्षेत्र में किये गये शोध कार्य सर्वमान्य एवं सर्वविदित हैं। भारतीय चिकित्सा पद्धति की इन औषधियों का उपयोग आयुर्वेदिक, होम्योपैथी, यूनानी व सिद्धा औषधियों में सदियों से होता रहा है। वर्तमान में भारत वर्ष के प्रमुख 15 कृषि जलवायु क्षेत्रों में लगभग 45000 पादप प्रजातियां पायी जाती हैं। इनमें कुल लगभग 15000 औषधीय महत्व की है जिनका प्रयोग विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों में किया जाता है।

परन्तु इसके साथ ही यह दुर्भाग्य की बात है कि एक तरफ जहाँ इनमें से अधिकांश पौधों की व्यवसायिक महत्ता तथा उनके औषधीय गुणों की पहचान नहीं है, वहीं इन जड़ी–बूटियों के अविवेक पूर्ण दोहन के कारण इनमें से अधिकांश जड़ी बूटियाँ लुप्त होने के कगार पर हैं। इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि इन जड़ी–बूटियों की विधिवत खेती की जाय जिससे बढ़ती हुई मांग के अनुसार गुणवत्ता युक्त औषधीय उत्पाद तैयार किया जा सके।

मुझे आशा है कि प्रस्तुत प्रशिक्षण पुस्तिका, औषधीय पौधों की खेती जैसे संभावना –सम्पन्न क्षेत्र में प्रसार कार्यकर्ताओं, किसानों, छात्रों एवं स्वयं सेवी संस्थाओं को मार्ग दर्शन प्रदान करने में सहायक सिद्ध होगी।

शुभकामनाओं सहित

(डा० सञ्जय सिंह)

Scanned by CamScanner

संदेश

डा० ए०के० सिंह
क्षेत्रीय परियोजना निदेशक
कानपुर

भारतीय सभ्यता में औषधीय पौधों के प्रयोग का सबसे पुराना प्रमाण आज से 7000 वर्ष पूर्व लिखे ऋग्वेद में मिलता है। इसके अतिरिक्त उपनिषदों, पुराणों, रामायण, महाभारत जैसे अनेक प्राचीन ग्रन्थो में भी औषधीय पौधो के प्रयोग तथा उपलब्धता का वर्णन प्राप्त होता है। औषधीय पौधों का प्रथम बार सूचीबद्ध अध्ययन आज से लगभग 2200 से 2700 वर्ष पूर्व चरक तथा सुश्रुत ने किया। विश्व में एलोपैथी चिकित्सा पद्धति में लगभग 75 पौधों का प्रयोग किया जा रहा है तथा लगभग 25 से 35 पौधों से निर्मित अंग्रेजी दवाइयां विभिन्न रूपो मे प्राप्त की जा सकती हैं। विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों में इन पौधों के बढ़ते प्रयोग के कारण इन पौधों के प्राकृतिक स्रोतों पर पिछले कुछ दशकों में अंधाधुंध दोहन का भारी दबाव उत्पन्न हुआ है, जिसके अनेक महत्वपूर्ण पौधों के विलोपन की आशंका उत्पन्न हो गई है तथा कुछ पौधे विलुप्त होने की कगार तक भी पहुँच चुके हैं। यदि इन प्राकृतिक पौधों के दोहन का क्रम इसी रफ्तार सें जारी रहा, तो एक दिन ये पौधे जंगलों से पूरी तरह लुप्त हो जायेंगे। अतः ऐसी स्थिति में किसानों को उनकी खेती के लिए प्रेरित करना ही इनके संरक्षण एवं बहुगुणन का एक मात्र ठोस उपाय है, जो न केवल इन पौधों के त्वरित दोहन को रोक सकता है बल्कि देश के किसानों की आर्थिक कायाकल्प भी कर सकता है। औषधीय पौधों की खेती से किसानों को किसी भी पारम्परिक फसल से कई गुना अधिक लाभ हो सकता है। भारत के उन्नतशील व जागरूक किसानो ने शीघ्र ही इस विषय को गम्भीरता से भॉप लिया है और दिनो–दिन अधिकाधिक संख्या में किसान इन पौधों की खेती के लिए अग्रसर हो रहे हैं।

कृषि विज्ञान केन्द्र, कटिया, सीतापुर के वैज्ञानिको ने औषधीय पौधौ की व्यवसायिक खेती विषयक पुस्तिका का प्रकाशन कर इस दिशा मे एक सार्थक प्रयास कियाा है, जिसके लिये मैं के. वी. के. टीम को शुभकामना प्रेषित करता हूँ।

(डा० ए०के० सिंह)

Scanned by CamScanner

लेखक की कलम से-

तेजी से परिवर्तित हो रहे परिवेश में कृषकों को नित नई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। प्राकृतिक संसाधनों के तीव्र क्षरण, खेती पर हावी होती जा रही बाजार की शक्तियाँ, पश्चिमीकरण की हवा में टूटते घर तथा बंटते जा रहे खेतों से स्थिति जटिल रूप ले रही है।

पूरी कोशिश के बाद भी हम विगत 60 वर्षों में 40 प्रतिशत से अधिक भूमि को सिंचित नहीं कर पाये और आधुनिक चिकित्सा पद्धति मुश्किल से 40 प्रतिशत आबादी को उपलब्ध हो पायी है जो जटिल, मंहगी और दुष्प्रभाव युक्त है।

परम्परागत धान, गेहूँ की व्यापारिक खेती की अपेक्षा चुनिंदा जड़ी–बूटियों की आधुनिक खेती करना आर्थिक दृष्टिकोण से ज्यादा लाभप्रद है। इन जड़ी–बूटियों की खेती कर हम प्राचीन भारतीय परम्पराओं, चिकित्सा पद्वतियों एवं सस्कारों को संरक्षित करने में एवं जन मानस को स्वास्थ्य प्रदान करने में सहयोग प्रदान कर सकते हैं।

कृषि विज्ञान केन्द्र, कटिया, सीतापुर ने विगत दो वर्षों में सीतापुर जनपद की विशिष्ट जलवायु दशाओं, मृदा, बाजार मांग के परिपेक्ष्य में विशिष्ट औषधीय पौधों को कृषकों के मध्य प्रसारित करने कर प्रयास किया है। विभिन्न संस्थानों, कृषि विश्वविद्यालयों में विकसित तकनीकों, प्रगतिशील कृषकों के अनुभव को एकत्र कर सरल एवं सरस हिन्दी भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयास इस पुस्तिका में किया गया है। प्रस्तुत पुस्तिका में 6 विशिष्ट औषधीय पौधों की व्यवसायिक कृषि तकनीक के साथ अन्य जानकारियों को भी उपलब्ध कराया गया है।

अन्ततः हम सभी अपने प्रेरणा स्रोत डा0 संजय सिंह, संसद सदस्य एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र–II, कटिया, सीतापुर एवं रानी डा0 अमीता सिंह पूर्व प्राविधिक शिक्षा मंत्री, उ0प्र0 शासन, डा0 ए0के0 सिंह, क्षेत्रीय परियोजना निदेशक, कानपुर, डा0 ओ0पी0 सिंह, न0दे0कृ0प्रौ0वि0, फैजाबाद, डा0 जी0एस0 गौर, पूर्व विभागाध्यक्ष, च0आ0कृ0वि0, कानपुर, डा0 दौलत सिंह, पूर्व विभागाध्यक्ष, च0आ0कृ0प्रौ0वि0, कानपुर, डा0 एस0के0 कनौजिया, प्रवक्ता च0भ0गु0कृ0म0, लखनऊ, प्रगतिशील कृषकों एवं के0वी0के0 के साथी वैज्ञानिकों कर्मचारियों के प्रति हृदय से आभारी है कि उन्होने हमें प्रेरणा, सुझाव एवं सहयोग प्रदान किया।

पुस्तिका में अगर कोई त्रृटि हुई हो तो हम लेखकगण क्षमाप्रार्थी है तथा आपके अमूल्य सुझाव की आशा करते हैं।

डा0 आनन्द सिंह
श्री शैलेन्द्र सिंह
डा0 लखन सिंह

Scanned by CamScanner

अनुक्रमणिका

क्र.	विवरण	पृष्ठ सं
1.	अश्वगंधा	1-3
2.	सर्पगंधा	4-6
3.	सतावर	7-9
4.	स्टीविया	10-13
5.	आर्टीमीशिया	14-16
6.	बच	17-19

Scanned by CamScanner

अश्वगंधा

हिन्दी नाम – अश्वगंधा

वैज्ञानिक नाम – विथानियां सोमनीफेरा
(Withania somnifera)

पादप कुल – सोलेनेसी

विवरण :

यह झाड़ीदार, बहुवर्षीय 2 से 3 फिट ऊँचा बहुशाखीय पौधा है इसकी पत्तियां गहरे हरे रंग की सफेद शिराविन्यासयुक्त अण्डाकार होती हैं फूल पीला हरापन लिए पिरामिड नुमा होता है। शाखाओं के अग्र भाग पर दिसम्बर से लेकर मार्च तक फूल लगते हैं । फल गोलाकार रसभरी के समान होता है, फल के अन्दर कटोरी के समान हल्के पीले रंग के बीज पाये जाते हैं।

प्राप्ति स्थान :

भारतवर्ष में यह पौधा मुख्यतया गुजरात, मध्य प्रदेश, राजस्थान, पश्चिमी उ.प्र., पंजाब, हरियाणा के मैदानों, महाराष्ट्र, कर्नाटक केरल एवं हिमालय में 1500 मीटर की ऊँचाई तक पाया जाता है। मध्य प्रदेश में इस पौधे की विधिवत खेती मन्दसौर, मनासा, जावद तथा नीमच जिले के लगभग 3000 हेक्टेयर क्षेत्र में की जा रही है तथा यह काफी सफल रही है। अश्वगंधा के पौधे 3 से 6 फीट तक ऊँचे होते हैं। इसके ताजे पत्तों तथा इसकी जड़ को मसल कर सूंघने से उनमें घोड़े के मूत्र जैसी गंध आती है। इसकी जड़ मूली के जैसी परन्तु उससे काफी पतली (पेन्सिल की मोटाई से लेकर 2.5 से 3.75 सेमी. मोटी) होती है तथा 30 से 45 सेमी तक लम्बी होती है।

औषधीय उपयोग :

आयुर्वेद में इसे गठिया के दर्द, जोड़ों की सूजन तथा रक्तचाप आदि जैसे रोगों के उपचार में इस्तेमाल किये जाने की अनुशंसा की गयी है। इसकी पत्तियां त्वचा रोग, सूजन एवं घाव भरने में भी उपयोगी होती हैं। अश्वगंधा पर आधारित शक्तिवर्धक औषधियां बाजार में टेबलेट, पाउडर एवं कैप्सूल फॉर्म में उपलब्ध हैं। बाजार में उपलब्ध विभिन्न प्रकार की दवायें जैसे–बीटा–एक्स, गोल्ड सिलाजीत, रसायनवटी, थ्री नाट थ्री, थर्टीप्लस, एनार्जिक–31 आदि के रूप में विक्रय किया जाता है। इन औषधियों में लगभग 5–10 मिग्रा. अश्वगंधा पाउडर का उपयोग एक कैप्सूल या टेबलेट में किया जाता है। जिसका बाजार विक्रय मूल्य 10–15 रुपये प्रति कैप्सूल है। इसकी उपयोगिता को देखते हुए चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर के वानिकी विभाग ने उ.प्र. में कृषकों को बरानी दशा में अश्वगंधा की व्यवसायिक खेती करने हेतु आसान, विधियाँ विकसित की हैं जिससे प्रदेश के किसान भाई भी इसका लाभ अन्य प्रदेशों के किसानों की तरह अधिकाधिक लाभ उठा सकें।

मुख्य रासायनिक अवयव :

अश्वगंधा की जड़ में पाये जाने वाले एल्केलाईड निकोटिन, सोम्निफेरिन, विथैनिन, विथैनेनिन,

Scanned by CamScanner

सोमिनिन, ट्रोपिन, स्यूडोट्रोपिन, कोलिन, कुस्कोहाइग्रिन, ऐनहाइग्रिन तथा फेनाफेरिन हैं। पत्तियों में पाये जाने वाले प्रमुख एल्केलाईड् विथैनोन तथा विथैफेरिन –ए हैं । फलों में ऐमीनो अम्ल मौजूद होते हैं। एल्केलाईडों के अतिरिक्त जड़ों में ग्लाइकोसाइड, विटानिऑल, स्टार्च, शर्करा तथा अमीनो अम्ल भी पाये जाते हैं। जिनका प्रयोग आयुर्वेदिक एवं यूनानी दवाईयों के निर्माण में किया जाता है। इसके बीज, फल, छाल एवं पत्तियों को विभिन्न शारीरिक व्याधियों के उपचार में प्रयुक्त किया जाता है।

कृषि तकनीक :

भूमि एवं जलवायु :

इसकी खेती के लिए बलुई दोमट या हल्की लाल मिट्टी जिसका पी.एच. 7.5–8.0 हो उत्तम होती है। इसकी जड़ों की वृद्धि व विकास के लिए शुष्क जलवायु उचित होती है। यह एक पछैती खरीफ की फसल है। इस फसल के लिए 650–750 मिमी. वार्षिक वर्षा एवं 20–35° सेंन्टीग्रेड तापमान सर्वोत्तम होता है।

प्रजातियाँ :

जवाहर अश्वगंधा 20, 22 एवं 134 नामक किस्म मन्दसौर कृषि महाविद्यालय (म.प्र.) ने विकसित की हैं। खराब एवं सूखे क्षेत्रों के लिए सीमैप लखनऊ द्वारा "पोशिता" एवं "रक्षिता" प्रजाति विकसित की गयी हैं जिसकी सूखी जड़ों की उपज 8–10 कु./है. एवं 0.5 प्रतिशत एल्केलाइड पाये जाते हैं। इसकी अन्य एक लोकल प्रजाति "नागौरी" भी है जो राजस्थान के नागौर जनपद से चयनित की गयी है। यह प्रजाति उपयोगी रासायनिक घटकों की मात्रा (एल्केलाइडों) की दृष्टि से उत्तम प्रजाति है।

बुवाई :

जुलाई के अन्तिम सप्ताह से लेकर अगस्त के प्रारम्भ तक बुआई करनी चाहिए। आमतौर पर बीज छिड़क कर बोये जाते हैं। एक हेक्टेयर भूमि में छिड़क कर बोने के लिए 12–15 किलो बीज की आवश्यकता होती है। बीज को छिड़कने के पश्चात उथली जुताई करके पाटा दे दिया जाता है। 7–10 दिन बाद बीजों का अंकुरण हो जाता है। यदि इसको कतारबद्ध तरीके से 25 सेमी. की दूरी पर बोया जाये तो निराई–गुड़ाई में आसानी होती है। बुआई से पहले बीजों को कवक रोगों से बचाने के लिए थीरम या बेवास्टीन दवा 3 ग्राम, प्रति किलो बीज की दर से बीजों को उपचारित कर लेना चाहिए। पौधशाला में पौधे तैयार करके भी रोपण किया जा सकता है। इस विधि से बीज को मानसून आने के समय पौधघर में क्यारियों में बोया जाता है। 6–7 दिनों में बीजों का अंकुरण पूर्ण हो जाता है। 6 सप्ताह बाद ये पौधे रोपण हेतु तैयार हो जाते हैं। पौधे 60 x 60 सेमी. के अन्तर से लगाये जाते हैं। बोने के बाद विरलीकरण कर 15–20 पौधे प्रति वर्ग मीटर रखे जाते हैं। बुआई के 25–30 दिन बाद पौधों का विरलीकरण करना चाहिए जिससे शेष पौधों की वृद्धि अच्छी प्रकार से हो सके।

खाद एवं उर्वरक :

खड़ी फसल में नाइट्रोजन प्रयोग के बाद निराई अवश्य करनी चाहिए। उर्वरक की आवश्यकता आमतौर पर नहीं पड़ती लेकिन 30 किग्रा. नाइट्रोजन (अमोनियम सल्फेट) प्रति हे. और 18–20 किग्रा. फास्फोरस उर्वरक बुवाई के पूर्व खेत में मिला देने से फसल पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। बुआई के लगभग 60–80 दिनों के बाद 10 किग्रा. नाइट्रोजन खड़ी फसल में खेतों में डालने से पौधों पर गुणकारी प्रभाव पड़ता है।

Scanned by CamScanner

सिंचाई :

अश्वगंधा में सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है परन्तु क्षेत्रानुसार पानी की आवश्यकता होने पर एक दो सिंचाई कर देनी चाहिए।

कीट एवं व्याधियाँ :

अश्वगंधा की फसल कभी–कभी माँहू, कीट एवं झुलसा आदि रोगों से प्रभावित होती है। कीटों के नियंत्रण के लिए क्रमशः नीम का तेल, एवं इन्डोसल्फान का छिड़काव तथा रोगों के लिए बेवस्टीन एवं बीजोपचार तथा खड़ी फसल के अलावा कम्पेनियन की 3 ग्राम मात्रा प्रति लीटर की दर से घोल तैयार करके बुआई के 30 दिन के उपरान्त छिड़कना लाभकारी रहता है। आवश्यकतानुसार 15 दिन के अन्तर पर पुनः छिड़काव कर सकते हैं।

फसल कटाई एवं संग्रहण :

अश्वगंधा की फसल लगभग 150–170 दिनों में परिपक्व हो जाती है। जब फसल के फलों का रंग लाल हो जाये एवं पत्तियों का सूखना प्रारम्भ हो जाये तो फसल की परिपक्वता सुनिश्चित हो जाती है। तत्पश्चात फसलों को उखाड़ लेना चाहिए एवं जड़ों को तने से काटकर, पानी में धोकर छायादार स्थानों पर सुखाकर जूट के बोरों में भरकर उनका संग्रहण कर लेना चाहिए।

आय–व्यय :

अश्वगन्धा की खेती पर होने वाली अनुमानित लागत एवं प्राप्ति का आर्थिक ब्योरा (प्रति एकड़)

क्रम सं.	विवरण	व्यय (रुपये)
(क)	**लागत**	
1.	खेत की तैयारी	1800.00
2.	खाद एवं उर्वरक	2000.00
3.	बीज की लागत (5 किग्रा. बीज रु. 200 प्रति किग्रा. की दर से)	1000.00
4.	निराई, गुड़ाई, विरलीकरण एवं सिंचाई	1800.00
5.	जड़ खुदाई (उखाड़ना), काटना, सूखना आदि पर व्यय	1600.00
6.	जडों की पैकिंग, ढुलाई आदि पर व्यय	2000.00
	कुल लागत :	**10,200.00**
(ख)	**कुल प्राप्तियां**	
1.	जड़ों की बिकी से प्राप्तियां उन्नतशील प्रजातियां (नागोरी, रक्षिता आदि) 5.0 से 7.5 कु. जड़ें दर रु. 60 प्रति किग्रा. (60 कु. औसतन जड़ें)	36,000.00
2.	बीज की बिकी से प्राप्तियां (30 किग्रा. औसत बीज रु. 80 प्रति किग्रा. की दर से)	2400.00
	योग :	**38,400.00**
(ग)	**शुद्ध लाभः 38,400 – 10,200**	**= 28,200.00**

नोटः- आय व्यय वर्ष 2010–11 के बाजार भाव के अनुसार

Scanned by CamScanner

सर्पगंधा

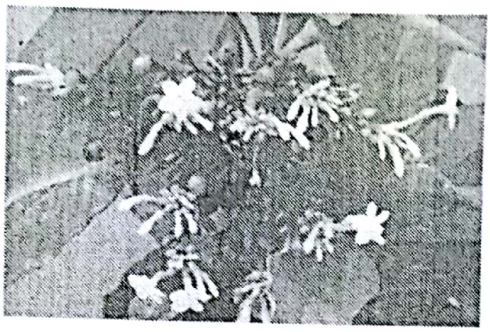

हिन्दी नाम – सर्पगंधा

वैज्ञानिक नाम – राउल्फिया सर्पेन्टिना
(Rauwalfia serpentina)

पादप कुल – एपोसायनेसी

विवरण :

भारतवर्ष द्वारा विकसित आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के उपयोग में लाये जाने वाले पौधों में सर्पगन्धा अपना विशेष स्थान रखता है लगभग 3000 वर्ष पूर्व लिखी गयी पुस्तक 'सुश्रुत' में भी इसका वर्णन मिलता है, सर्पगन्धा नाड़ी संस्थान एवं उच्च रक्त चाप के रोगों के लिए उत्तम औषधि है इसलिए बिहार में यह पागलपन की जड़ी' के नाम से भी प्रसिद्ध है। यह 1–3 फुट लम्बा चिकना बहुवर्षीय पौधा है। पत्तियाँ चमकोली 3–4 पत्तियों के साथ एक चक्र में भालाकार, अभिलट्रवाकार, आयताकार तथा छोटे प्रर्णवृत्तायुक्त होती है फूल छोटे गुच्छे में सफेद गुलाबी रंग के होते हैं जो अगस्त से लेकर नवम्बर तक खिलते हैं। जड़ स्वाद से कड़वी, गन्धयुक्त, वाह्यस्वरूप, झुर्रीदार तथा अनियमित धारीदार होती है।

प्राप्ति स्थान :

सर्पगन्धा दक्षिण पूर्वी एशिया मूल का पौधा है। भारत के साथ बांग्लादेश, श्रीलंका, बर्मा, मलेशिया, अंडमान द्वीप तथा इन्डोनेशिया आदि में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। भारत में मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश, पूर्वी बिहार, आसाम, उत्तरांचल के तराई क्षेत्र, उत्तरी बंगाल, उड़ीसा, आन्ध्रप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, कर्नाटक, गोवा तथा केरल के कुछ भागों के वनों में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है।

औषधीय उपयोग :

सर्पगन्धा की जड़ें शूलहर, रक्त भारधिक्यशामक, वल्य, निद्राकारक होती है। इसके उपयोग से मन शान्त रहता है तथा धीरे–धीरे मष्तिस्क के विकार भी दूर हो जाते हैं। यह मातृत्व जनन, सर्पविष, कृमिरोग, वर्णरोपण आदि में भी लाभकारी होता है लेकिन गर्भवती महिलाओं को इसका सेवन नहीं करना चाहिए।

मुख्य रासायनिक अवयव :

सर्पगन्धा में लगभग 5 से भी अधिक एल्केलाइड्स पाये जाते हैं। जिनमें रिसर्पिन, सर्पेन्टीन, सर्पेटिनीन आदि प्रमुख हैं। इसकी जड़ों में 1.7– 3.0 प्रतिशत तक पायी जाती है इसके अतिरिक्त अजमेलसीन, स्टार्च तथा लवण आदि भी प्राये जाते हैं।

कृषि तकनीक :

भूमि एवं जलवायु :

सर्पगन्धा भारतीय महाद्वीप का मूल निवासी पौधा होने के कारण भारतवर्ष में कई क्षेत्रों की जलवायु इसके लिए काफी लाभदायक पायी जाती है। इसकी खेती के लिए बलुई या दोमट, काली, कपासीय मिट्टी जिसमें

Scanned by CamScanner

जीवांश की प्रचुर मात्रा तथा पानी निकलने की उपयुक्त व्यवस्था हो यदि मिट्टी का पी.एच. मान कम (4.6–6.2) हो तो सर्पगन्धा की खेती से अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है तथा जिन क्षेत्रों में पाला पड़ने की संभावना कम हो वे इसके लिए अधिक उपयुक्त होते हैं।

प्रजातियाँ :

जवाहरलाल कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.) ने सर्पगन्धा की एक उन्नत प्रजाति विकसित की है, जिसे "आर.एस.–1" का नाम दिया गया है। इस प्रजाति से 7 माह पुराने बीजों में भी 50–60 प्रतिशत तक अंकुरण पाया गया है। सर्पगन्धा की इस प्रजाति के 18 माह के पौधों से प्राप्त जड़ों में 1.64 से 2.94 प्रतिशत तक एल्केलाइड पाया जाता है।

बुवाई :

सर्पगन्धा की फसल को कम से कम दो वर्ष तक खेत में रखना होता है अतः मुख्य खेती की तैयारी पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। इसके लिये पहले दो बार क्रास गहरी जुताई करके खेत में पर्याप्त मात्रा में 8–10 ट्राली गोबर अथवा कम्पोस्ट खाद मिला देनी चाहिए। व्यवसायिक खेती की दृष्टि से सर्पगन्धा के प्रवर्धन का सर्वोत्तम तरीका इसके बीजों से प्रवर्धन कराना होता है। इन बीजों को रात भर पानी में भिगोकर रखा जाता है। बुवाई से पूर्व इन बीजों को थीरम (2 से 3 ग्राम/किग्रा.) या गोमूत्र से उपचारित किया जाना उपयोगी रहता है। नर्सरी में इसकी बुआई का उपयुक्त समय अप्रैल से मई का होता है। एक एकड़ में 2–3 किग्रा. बीज की आवश्यकता पड़ती है तथा प्रायः 20 से 50 दिन तक इसकी उगने की प्रक्रिया चलती रहती है।

खाद एवं उर्वरक :

इसकी अच्छी फसल के लिए 10–12 टन गोबर की खाद, 30 किग्रा. नत्रजन, 60 किग्रा. फास्फोरस एवं 30 किग्रा. पोटाश प्रति हैक्टेयर की आवश्यकता होती है। रोपण के समय गोबर की खाद, फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा एवं नत्रजन की आधी मात्रा भूमि में मिला देते हैं। शेष नाइट्रोजन 2 बार में 60 दिन के अन्तराल पर डालते हैं।

सिंचाई :

जड़ों के सही विकास के लिए गर्मी के मौसम में 20 दिन के अंतराल में तथा शीतकाल में 30 दिनों के अंतराल पर लगातार सिंचाई करनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण :

सर्पगन्धा की अच्छी फसल के लिए पहले वर्ष लगभग 3–4 निराई–गुड़ाई करके खरपतवार निकाल देनी चाहिए। अगले वर्ष 2–3 निराई गुड़ाई की आवश्यकता पड़ती है।

कीट एवं व्याधियाँ :

सर्पगन्धा की जड़ों में कई प्रकार के कृमि निमेटोड्स एवं दीमक का प्रकोप विकसित हो सकते हैं इनसे सुरक्षा के लिए नीम की खली 150 किग्रा., 10 किग्रा. कार्बोफ्यूरान–3 जी अथवा 8 किग्रा., कम्फारेस्ट–10 जी. प्रति एकड़ का प्रयोग करना चाहिए। पत्तियों पर कभी–कभी फफूँदी की सफेद परत होने पर कैरोथान–35 ई.सी. के 0.05 प्रतिशत का उपयोग करना चाहिए।

Scanned by CamScanner

फसल कटाई :

सर्पगन्धा के पौधों में कत्थई काले फल एकत्रित कर लगभग 15–20 घण्टे तक पानी में भिगोकर फलों को मसलकर बीज निकालने के उपरान्त बीजों को 2–3 दिन तक सुखा लेना चाहिए तथा जड़ों की खुदाई के 8–10 दिन पहले सिंचाई कर लेनी चाहिए क्योंकि सारी खाद्य सामग्री फलों तथा बीजों को चली जाती है, इसलिए जड़ें कमजोर रह सकती हैं । अतः पहली बार आने वाले फूलों को तोड़ देना चाहिए तथा आगे आने वाले फूलों, फलों तथा बीजों को बढ़ने दिया जाता है। इनमें से पके हुए फलों को सप्ताह में दो बार तोड़ लिया जाता है, यह सिलसिला पौधों को उखडने तक निरन्तर चलता रहता है। सर्पगन्धा की जड़ों को उखाड़ने की सर्वाधिक उपयुक्त अवधि 30 माह तक की है। अतः जब फसल ढ़ाई वर्ष की हो जाये तथा सर्दी के मौसम में जब पत्ते झड़ जायें तब जड़ों को खोद लेना चाहिए। सर्दी के समय इसमें एल्कोलाइड की मात्रा अधिक होती है।

भण्डारण :

जड़ों को साफ कर लेने के बाद इन्हें अच्छी तरह सुखाया जाता है। सूखने के उपरान्त जड़ों में 12 प्रतिशत से अधिक नमी नहीं होनी चाहिए, अतः जड़ इतनी सूख जानी चाहिए कि तोड़ने पर चट की आवाज हो। इन सूखी जड़ों को सुरक्षित जगह पर जूट के बोरों में भरकर भण्डारण कर लेना चाहिए।

आय–व्यय :

सर्पगन्धा की खेती पर होने वाली अनुमानित लागत एवं प्राप्ति का आर्थिक ब्योरा (प्रति एकड़)

क्रम सं.	विवरण	व्यय (रुपये)
(क)	लागत	
1.	खेत की तैयारी पर व्यय	2500.00
2.	रोपण सामग्री (3 किग्रा.बीज, 3000 रुपये प्रति की दर से)	9000.00
3.	खाद एवं उर्वरक पर व्यय	6000.00
4.	नर्सरी पर व्यय	2800.00
5.	पौध रोपण पर व्यय	3000.00
6.	सिंचाई, निराई–गुड़ाइ एवं फसल की देखभाल पर व्यय	9000.00
7.	बीज एकत्र करने पर व्यय	2200.00
8.	जड़ों की खुदाई, धुलाई, सुखाने एवं पैकिंग पर व्यय	6500.00
9.	अन्य खर्चे (भाड़ा आदि में)	2000.00
	कुल लागत :	43,000.00
(ख)	कुल प्राप्तियां (24 माह के आधार पर)	
	(1) सूखी जड़ें (8–10 कु.) रु. 100/– प्रति किग्रा. की दर से	80,000.00
	(2) बीजों की बिक्री से प्राप्तियां (25 किग्रा. बीज, रु. 2000/– प्रति किग्रा. की दर से	75,000.00
	योग :	1,55,000.00
(ग)	शुद्ध लाभः 1,55,000.00 – 43,000.00 =	112,000.00

नोटः– आय व्यय वर्ष 2010–11 के बाजार भाव के अनुसार

Scanned by CamScanner

सतावर

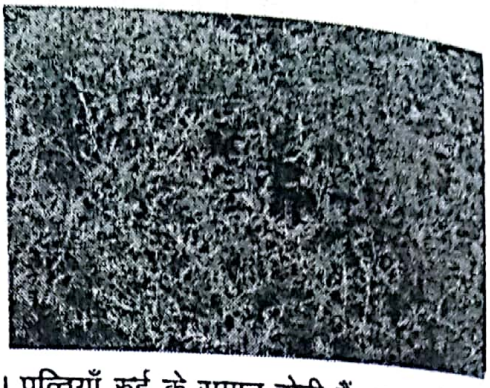

हिन्दी नाम – सतावर (सतावरी)

वैज्ञानिक नाम – ऐस्पेरेगस रेसीमोसस
(Asparagus rasemosus)

पादप कुल – लिलिऐसी (ऐसपेरेगेसी)

विवरण :

सतावर एक लम्बी, बहुवर्षीय, बहुशासित लता (बेल) है। पत्तियाँ रुई के समान होती हैं। तना भूरे रंग का छोटे तथा कॉटेदार होता है। इसके फूल सफेद रंग के हल्की सुगन्ध लिये होते हैं। फूल अगस्त से सितम्बर तक खिलते हैं। फल अक्टूबर से दिसम्बर तक बनते हैं। एक मीटर लम्बे, नये पौधे की जड़ें 6–8 इंच लम्बी तथा 1–15 सेमी. व्यास की हो जाती हैं।

प्राप्ति स्थान :

इसकी लता प्राकृतिक रूप से देश के अधिकांश भागों में उगती हुयी देखी जा सकती है। गंगा के मैदानी क्षेत्र सहित देश के सभी मैदानी भागों में इसे उगाया जा सकता है। प्रायः घरों तथा उद्यानों में इसे शोभाकारी पौधे के रूप में लगाया जाता है।

औषधीय उपयोग :

इसका प्रयोग अनेक रोगों में किया जाता है। जड़ों के पाउडर को दूध तथा चीनी के साथ उबालकर पीने से शक्ति प्रदान करने के अलावा यह अनेक प्रकार के तंत्रिका तन्त्र सम्बन्धी रोगों में भी लाभ देती है। महिलाओं में स्तनों में दूध में वृद्धि करती है। मूत्र सम्बन्धी रोगों में लाभ देती है। आधुनिक प्रयोग में यह कामोत्तेजक, नपुंसकता नाशक, शक्तिदायक, दस्तरोधी तथा मूत्ररोग के लिए प्रयोग की जाती है। इसके बीजों से प्राप्त तेल रीढ़ की हड्डी, गठिया व जोड़ों के दर्द के लिए भी उपयोगी है।

मुख्य रासायनिक अवयव :

सतावर की जड़ों, पत्तियों, फूलों एवं अन्य भागों में 116 कार्बनिक तथा अकार्बनिक यौगिक तथा तत्व पाये जाते हैं, जिसमें से सेपोनिन सबसे महत्वपूर्ण तत्व है । क्योंकि शक्तिवर्धक औषधीय दवाओं में अत्यधिक योगदान सेपोनिन का है।

कृषि तकनीक :

भूमि एवं जलवायु :

सतावर की खेती रेतीली दोमट से मृत्तिका दोमट तक एवं हल्की अम्लीय से हल्की क्षारीय एवं सभी भूमियों में की जा सकती है । इसके लिए उचित जल निकास आवश्यक है, साथ ही वर्षा के मौसम में जल इकट्ठा नहीं होना चाहिए। उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्र इसकी खेती के लिए सर्वोत्तम हैं।

Scanned by CamScanner

प्रजातियाँ :

सतावर की प्रजातियाँ अभी तक विकास की अवस्था में है वैसे नेपाल, टनकपुर व आस–पास के क्षेत्रों से प्राप्त पीली सतावर का अच्छा बाजार है। वर्तमान में स्थानीय बीज अथवा राकर्स का ही प्रयोग हो रहा है। इसकी कृषि तकनीकी विकसित करने हेतु कृषि विश्वविद्यालय, कानपुर में शोध कार्य चल रहा है।

बुवाई :

सतावर की बुवाई हेतु वर्षाकाल उत्तम है । पौध स्थापना के समय मौसम एवं भूमि दोनों ही नमी की अवस्था में होने चाहिए। ऐसी अवस्था पौधों की जड़ों के जमाव के लिए उचित है । बुवाई से पूर्व गहरी जुताई कर मिट्टी को भुरभुरा बना लेना चाहिए। तत्पश्चात फसल को बीज अथवा रूट सकर के द्वारा उगाया जाता है।

नर्सरी :

बीज द्वारा उगाने के लिए अप्रैल–मई माह में नर्सरी तैयार करना चाहिए, बोने से पहले बीजों के कठोर बाह्य आवरण को नरम बनाने के लिए एक दिन तक गुनगुने पानी में भिगोकर रखना चाहिए। तत्पश्चात 5 किलोग्राम प्रति एकड़ की दर से नर्सरी में बुवाई करनी चाहिए। नर्सरी को आवश्यकता के अनुसार पानी देते रहें जिससे नमी बनी रहे। दो माह बाद पौधे रोपने लायक हो जाते हैं, जिन्हें नर्सरी से खेत में स्थानान्तरित कर देना चाहिए।

पौध रोपण :

वर्षा शुरू होते ही रोपाई प्रारम्भ कर देनी चाहिए एवं पौधे 30 x 30 सेमी. की दूरी पर लगाने चाहिए। यदि फसल की कटाई दो वर्ष बाद करनी हो तब दूरी 60 x 60 सेमी. या 45 x 45 सेमी. रखनी चाहिए। इसकी बेल को चढ़ाने के लिए 8 से 10 फिट लम्बा लकड़ी का डण्डा लगाना आवश्यक है जिससे बेल आसानी से चढ़ सके।

खाद एवं उर्वरक :

सतावर की फसल के लिए 20 से 25 टन गोबर की सड़ी हुयी खाद प्रति है. देना चाहिए जिससे उच्च उत्पादकता एवं गुणवत्ता बनी रहती है।

सिंचाई :

सतावर एक कन्दीय फसल होने के कारण न्यूनतम् सिंचाई होने पर भी अच्छी तरह से उगायी जा सकती है। अच्छी पैदावार लेने के लिए भूमि में लगातार नमी बनाये रखना चाहिए। अत्यधिक नमी इसकी खेती को नुकसानदेय है। क्योंकि अत्यधिक नमी से इसकी जड़ों के गलने का खतरा रहता है। वर्षा में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है केवल गर्मियों में ज़मीन सूखने से बचाना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण :

सतावर के लिए वर्ष भर में 2–3 निकाई–गुड़ाई की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि फसल के प्रारम्भिक वर्ष में खरपतवार फसल को अधिक नुकसान पहुँचाते हैं। यदि संपूर्ण फसल की सफाई न हो सके तो पौधों के पास निराई अवश्य करानी चाहिए।

Scanned by CamScanner

कीट एवं व्याधियाँ :

इसकी फसल में कीट या रोग कम ही देखे गये हैं। प्राकृतिक अवस्था में जड़ों में जड़ गलन रोग देखा गया है, जिससे जड़ के अंदर का हिस्सा गलकर समाप्त हो जाता है।

फसल कटाई :

सतावर की खुदाई 2 वर्ष के बाद की जाती है। एक वर्ष के पौधों से अपरिपक्व तथा कम लम्बाई की कन्द प्राप्त होती है। 2 वर्ष से अधिक होने पर कन्दों में वृद्धि तो होती है लेकिन कन्दों में रेसा अधिक बनने के कारण इसकी गुणवत्ता में कमी आ जाती है। नवम्बर से जनवरी तक पौधों में सुसुप्तावस्था रहती है । इसकी बढ़वार बाकी 4–5 माह में होती है । इसकी खुदाई नवम्बर माह में करनी चाहिए।

उपज :

सतावर की अच्छी फसल से लगभग 100 कु./एकड़ ताजी कन्द प्राप्त होती है जो सुखाने के बाद लगभग 10 क्विंटल (10 प्रतिशत) रह जाती है।

भण्डारण :

सतावर की जड़ों को खेत से उखाड़कर पानी में धोकर गर्म पानी से उपचारित करके उतारा जाता है। बाद में इसे छाया में सुखाकर जूट के बोरों में भरकर भण्डारित करते हैं।

आय–व्यय :

सतावर की खेती पर होने वाली अनुमानित लागत एवं प्राप्ति का आर्थिक ब्योरा (प्रति एकड़)

कम सं.	विवरण	व्यय (रुपये)
(क)	लागत	
1.	खेत की तैयारी पर व्यय	2500.00
2.	रोपण सामग्री (5 किग्रा. बीज, 2000 रु./किग्रा. की दर से)	10000.00
3.	खाद आदि पर व्यय	6300.00
4.	पौधशाला तैयार करने पर व्यय	4200.00
5.	सिंचाई व निराई–गुड़ाई पर व्यय	7500.00
6.	आरोहण व्यवस्था पर व्यय	4000.00
7.	कन्दों की खुदाई एवं छिलाई पर व्यय	7700.00
8.	कन्दों को सुखाने एवं पैकिंग आदि पर व्यय	5800.00
9.	अन्य खर्चे	2000.00
	कुल लागत :	**50,000.00**
(ख)	**कुल प्राप्तियां (दो वर्ष के आधार पर)**	
	सूखी जड़ें 10 कुन्तल नेपाली/ पीली सतावर दर 200 रुपये प्रति किग्रा.	2,00,000.00
	योग :	**2,00,000.00**
(ग)	**शुद्ध लाभः 2,00,000.00 – 50,000.00 =**	**1,50,000.00**

नोटः– आय व्यय वर्ष 2010–11 के बाजार भाव के अनुसार

Scanned by CamScanner

स्टीविया

हिन्दी नाम — मधुपत्ती

वैज्ञानिक नाम — स्टीविया रीबाउदिआना *(Stevia rebaudiana)*

पादप कुल — कम्पोजिटी (एस्ट्रेसी)

विवरण :

स्टीविया को मधु पत्र, मधुपत्ती अथवा चीनी तुलसी के नाम से भी जाना जाता है। यह अपनी सामान्य अवस्था में शक्कर से लगभग 25–30 गुना ज़्यादा मीठा होता है। इसका [illegible] तुलसी के समान होता है, पत्तियाँ भी तुलसी की पत्ती जैसी होती हैं। इसका पौधा लगभग 60–70 [illegible] ऊँचा एक बहुशाखीय, बहुवर्षीय पौधा होता है।

प्राप्ति स्थान :

यह मध्य पेरूगवे का मूल पौधा है। जहाँ पर यह प्राकृतिक अवस्था में नदियों के किनारे एवं तालाबों के किनारे पाया जाता है। वर्तमान में पेरूगवे, जापान, कोरिया, ताईवान, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा दक्षिण एशियाई देशों में इसकी व्यवसायिक खेती प्रारम्भ हो चुकी है। भारतवर्ष के विभिन्न भागों जैसे बंगलौर, पुणे, इन्दौर आदि में भी इसकी खेती आरम्भ हो चुकी है।

औषधीय उपयोग :

स्टीविया की उपयोगिता इसमें पाये जाने वाले मिठास के गुण के कारण है। यह सामान्य शक्कर की तुलना में 25 से 30 गुना ज़्यादा मीठा होता है जिससे शक्कर के विकल्प के रूप में इसके उपयोग की संभावनायें बढ़ी हैं। यह न केवल सामान्य शक्कर से ज़्यादा मीठा है बल्कि यह पूर्णतया कैलोरी रहित भी है जिससे न केवल मधुमेह रोगियों के लिये शक्कर के विकल्प के रूप में इसका उपयोग सुरक्षित है बल्कि ऐसे व्यक्ति जो अपने वजन बढ़ने के प्रति काफी सचेत रहते हैं। (क्योंकि सामान्य शक्कर के उपयोग से वजन बढ़ता है) कैलोरी रहित होने की वजह से उनके लिये भी इसका उपयोग पूर्णतया सुरक्षित है। इसके साथ–साथ हर्बल उत्पाद होने की वजह से इसका कोई कुप्रभाव (साईड इफैक्ट्स) नहीं है तथा वर्तमान में प्रयोग लाये जाने वाले "स्वीटनर्स" जैसे–शुगर फ्री, सेक्रीन, राटेल, एस्पार्टेम की अपेक्षा पूर्णतया सुरक्षित है। विशेषतया भारतीय परिपेक्ष्य में जहाँ शक्कर के बिना कोई पकवान नहीं बनाया जा सकता तथा जहाँ 40 वर्ष से अधिक के आयु समूह में काफी अधिक संख्या में लोग मधुमेह से पीड़ित हैं। स्टीविया एक वरदान के रूप में प्रकट हुआ है, इसके अतिरिक्त यह रक्तचाप तथा रक्त शर्करा के नियमतीकरण करने में, दॉतों, मसूड़ों में होने वाली बीमारियों में प्रयोग किया जाता है।

मुख्य रासायनिक अवयव :

इसमें मुख्य रूप से स्टीवियोसाइड (7–14 प्रतिशत) तथा रिबाउदिसाइड–1 होते हैं जिनमें इन्सुलिन संतुलन के गुण पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें रिबाइदिस, रिबाउदिसाइड–सी, डुलकोसोइड तथा छः अन्य यौगिक पाये जाते हैं।

Scanned by CamScanner

कृषि तकनीक :

भूमि एवं जलवायु :

उपयुक्त जल निकास वाली रेतीली नम दोमट मिट्टी जिसका पी.एच. मान 6–8 तक हो, स्टीविया के लिए उपयुक्त पायी गयी है। इसकी खेती क्षारीय भूमियों में नहीं करना चाहिए। जल भराव वाली भूमियों के लिए भी यह अत्यन्त संवेदनशील है। इसकी खेती के लिए अर्ध आर्द्र तथा अर्ध उष्ण किस्म की जलवायु काफी उपयुक्त पायी जाती है। इसका पौधा मध्य भारत की जलवायु जहां औसतन 11 से 42 डिग्री सेल्सियस तक तापमान रहता हो, में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

सूक्ष्म जलवायु प्रबन्धन :

विशेष रूप से ग्रीष्म ऋतु में उच्च तापमान 41° सेन्टिग्रेड से अधिक होने पर गर्मी की तपिस एवं गर्म हवाओं (लू) से इसकी फसल को बचाने के लिए स्टीविया की दो लाइनो (बेड) के बीच में एक लाइन गर्मी वाली मक्का (बेबी कॉर्न मक्का) की बुवाई कर दी जाती है। इसके साथ ही जितने क्षेत्रफल में स्टीविया की फसल लगाई गयी है उसके चारों तरफ़ एक मीटर चौड़ी पट्टी में ढ़ेंचा बोकर उसकी बाढ़ लगा दी जाती है। जिसके कारण गर्मी वाली मक्का तेज धूप को सीधे स्टीविया के पौधों तक नहीं आने देगी इसके साथ ढ़ेंचा की एक मीटर बाढ़ गर्म हवाओं (लू) को रोकेगी जिससे स्टीविया की फसल अत्याधिक गर्मी एवं गर्म हवा के प्रकोप से झुलसने से सुरक्षित रहेगी। इस विधि से स्टीविया की फसल लेने से इसके लिए किसी भी पॉली हाउस/नेट हाउस/ग्रीन हाउस की आवश्यकता नहीं पड़ती है। वैसे भी स्टीविया के पौधे अधिक छाया पसन्द नहीं करते हैं। इनके समुचित विकास के लिए इन्हें खुले में ही लगाना चाहिए। जिससे इसमें पाये जाने वाला तत्व स्टीवियोसाइड भी प्रभावित न हो।

प्रजातियाँ :

विश्व भर मे स्टीविया की लगभग 90 प्रजातियां विकसित की गयी हैं जो कि विभिन्न स्थानीय सम्बन्धित क्षेत्रों की जलवायु के अनुरूप है। किसान भाइयों की ऐसी प्रजातियों की खेती करनी चाहिए जिनमें स्टीवियोसाइड की मात्रा ज़्यादा से ज़्यादा हो तथा जो अपने क्षेत्र की जलवायु के भी अनुरूप हो। वर्तमान में कृषिकरण की दृष्टि से स्टीविया की मुख्यतया तीन प्रजातियाँ एस.आर.बी.–113, 128 एवं 512 प्रचलन में हैं। जो सनफूड्स इण्डिया लि., पूना द्वारा विकसित की गयी हैं। कृषिकरण की दृष्टि से स्टीविया की सर्वोत्तम प्रजाति एस.आर.बी.–128 मानी जाती है। इसमें 21 प्रतिशत तक ग्लूकोसाइड पाये गये हैं। यह प्रजाति भारतवर्ष के उत्तरी क्षेत्रों के लिए भी उतनी ही उपयुक्त है जितनी कि दक्षिण भारतवर्ष के लिए है।

बुवाई/प्रवर्धन :

नर्सरी :

स्टीविया के व्यावसायिक कृषिकरण की दृष्टि से यह आवश्यक है कि एसी उपयुक्त प्रजाति का चयन किया जाय जो सम्बन्धित क्षेत्र की जलवायु के अनुकूल हो। स्टीविया का प्रवर्धन बीजों एवं भूस्तरित तनों द्वारा होता है। इसके बीजों से इसका पुनर्उत्पादन बहुत ही कम होता है। अतः साधारणतया इसे ताजा वर्ष की टहनियों से कटिंग लेकर (15 सेमी.) नर्सरी में उगाया जाता है। इसके लिए उत्तम समय फरवरी–मार्च एवं सितम्बर–अक्टूबर माना जाता है। कटिंग्स को 100 पी.पी.एम. शक्ति के पेक्लोब्यूट्राजोल से उपचारित करने पर इसकी जड़ें जल्दी आ जाती हैं।

Scanned by CamScanner

पौध रोपण :

फरवरी–मार्च में जड़ युक्त तने की कटिंग्स को खेत में 40 x 30 सेमी. की दूरी पर रोपित कर दिया जाता है तथा एक हल्की सिंचाई कर दी जाती है। खेत में 60 सेमी. (लगभग 2 फीट) चौड़ी उभरी मेंड़ (बेड्स) बना ली जाती है जिनकी ऊँचाई 6 से 9 इंच रखते हैं एवं दो बेडस के बीच में एक फीट की नाली रखनी चाहिए। बेडस पर पौध रोपण करते समय एक मेड़ पर दो लाइन 40 सेमी. की दूरी पर रखते हैं एवं 10 सेमी. बेडस दोनों तरफ खाली रखते हैं। पौधे से पौधे की दूरी 30 सेमी. रखनी चाहिए। इसी के साथ इसकी फसल अधिकतम गर्मी (जून माह) एवं लू (गर्म हवा) से बचाने के लिए प्रत्येक 2 लाइन स्टीविया के बाद एक लाइन बीच में बेबीकोर्न मक्का बोनी चाहिए। यह मक्का बेडस के किनारे लाइन में बोते हैं। जो गर्म हवा के प्रकोप से स्टीविया को बचाती है। साथ ही स्टीविया की फसल के खेत के चारों तरफ एक मीटर ढँचा बोना चाहिए। यह भी लू (गर्म हवा) से फसल को बचाता है। इस प्रकार एक एकड़ खेत में रोपाई हेतु लगभग 30,000 (तीस हजार) पौधे लगते हैं।

खाद एवं उर्वरक :

स्टीविया की फसल बुवाई से पूर्व 15 टन गोबर की सड़ी हुई खाद ड[illegible] चाहिए। अच्छी पैदावार के लिए 30 किग्रा. नाइट्रोजन, 20 किग्रा. फास्फोरस एवं 20 किग्रा. पोटाश प्रति एकड़ की आवश्यकता होती है।

सिंचाई :

स्टीविया की खेती को अधिक पानी चाहिए तथा गर्मियों में इसकी 3–5 दिन के अन्तराल पर लगातार सिंचाई करना ज़रूरी है जिससे सदैव नमी बनी रहे।

खरपतवार नियंत्रण :

स्टीविया रोपण के एक माह बाद पहली निराई की जाती है इसके बाद आवश्यकतानुसार 15 दिन से 1 माह में खेत को खरपतवार से मुक्त करने के लिए निराई करते रहना चाहिए।

कीट एवं व्याधियाँ :

स्टीविया के पौधे में रोग प्रतिरक्षण के गुण हैं सामान्यतः इसमें रोग कम ही लगता है, लेकिन कभी–कभी बोरोन की कमी के कारण पत्तियों पर धब्बे हो जाते हैं जिसे 6 प्रतिशत बोरेक्स का छिड़काव करके समाप्त किया जा सकता है।

कटाई :

रोपण के 3 माह पश्चात यह फसल पहली कटाई के लिए तैयार हो जाती है, इसकी कटाई तने को जमीन से 5–8 सेमी. ऊपर तक हिस्सा छोड़ते हुए की जाती है जिससे कि छोटे हिस्से से पुनर्उत्पादन हो सके। इसके बाद दुबारा 90 दिन पश्चात यह फसल पुनः कटाई के लिए तैयार हो जाती है। एक वर्ष में इस प्रकार कम से कम 4 कटाई की जा सकती है, स्टीविया की पत्तियाँ ही व्यापार हेतु उपयोगी हैं। अतः इनका उत्पादन बढ़ाने हेतु फूलों को तोड़कर फेंक दिया जाता है । फूलों की तुड़ाई 30, 45, 60, 75 और 85 दिनों के अन्तराल पर की जानी चाहिए। सामान्यतः फूल रोपण के 40 दिन बाद दिखाई देने लग जाते हैं। अतः फूलों को ऐसे समय में 40 और 55 दिवस पश्चात् तोड़ देना चाहिए तथा पत्तियों को भी 90 दिन में तोड़ना ज़रूरी हो जाता है।

Scanned by CamScanner

भण्डारण :

स्टीविया के पत्तों को तोड़ लेने के उपरान्त उन्हें छाया में सुखाया जाना चाहिए। प्राय: तीन–चार रोज तक छाये में सुखा लिए जाने पर पत्ते पूर्णतया: नमी रहित हो जाते हैं। इसके बाद इसकी सूखी पत्तियों को हल्के जूट के बोरे में भरकर सुरक्षित स्थान पर रख लिया जाता है। स्टीविया के सूखी पत्तियों का पाउडर बना कर भी बेचा जा सकता है तथा इसका एक्सट्रैक्ट भी निकाला जा सकता है। वैसे किसानों के स्तर पर इसके सूखे पत्ते बेचा जाना ही उपयुक्त होता है। स्टीविया के पत्तों की बिकी दर भी कई कारकों पर निर्भर करती है जिसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं कि इनमें उपस्थिति स्टीवियोसाइड की मात्रा जिसके अनुसार इसकी बिकी होती है उसे भण्डारण के समय सुरक्षित रखा जाय।

आय–व्यय :

स्टीविया की खेती पर होने वाली अनुमानित लागत एवं प्राप्ति का आर्थिक ब्योरा (प्रति एकड़)

क्र.सं.	विवरण	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ	पंचम वर्ष
क	लागत					
1.	खेत की तैयारी तथा बैड्स बनाने में व्यय	4300	–	–	–	–
2.	पौध सामग्री पर व्यय (4 रु. प्रति पौधे की दर से 30,000 पौधों के लिए)	120000	–	–	–	–
3.	पौधों की रोपाई पर व्यय	3000	–	–	–	–
4.	खाद तथा जैविक पेस्टीसाइड पर व्यय	12000	6000	6000	6000	6000
5.	सिंचाई	8500	8500	8500	8500	8500
6.	निराई–गुड़ाई	9000	9000	9000	9000	9000
7.	फसल कटाई तथा सुखाने पर व्यय	7500	7500	7500	7500	7500
8.	पत्तियों की पैकिंग, भाड़ा आदि पर व्यय	6500	6500	6500	6500	6500
9.	अन्य खर्चे	2000	2000	2000	2000	2000
	कुल योग :	**172800**	**39500**	**39500**	**39500**	**39500**
ख	कुल प्राप्तियां					
	उत्पादन प्रति वर्ष चार कटाई से	18 कु. सूखी पत्तियां	20 कु. सूखी पत्तियां	22 कु. सूखी पत्तियां	20 कु. सूखी पत्तियां	18 कु. सूखी पत्तियां
	पत्तियों की बिकी से प्राप्तियां : (100 रुपये प्रति किग्रा.की दर से)	**180000**	**200000**	**220000**	**200000**	**180000**
	शुद्ध लाभ :	**7200**	**160500**	**180500**	**160500**	**140500**

नोटः– आय व्यय वर्ष 2010–11 के बाजार भाव के अनुसार

Scanned by CamScanner

आर्टीमीशिया

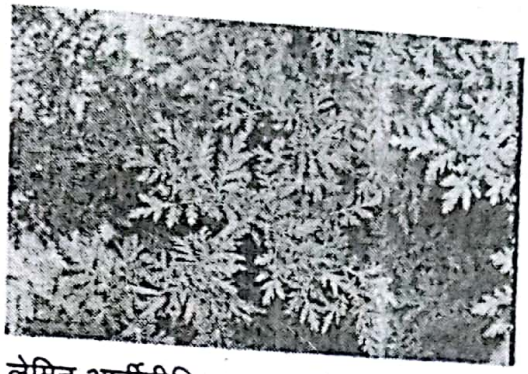

हिन्दी नाम – आर्टीमीशिया

वैज्ञानिक नाम – आर्टीमीशिया एनुआ
(Artimisia annua)

पादप कुल – कम्पोजिटी *(Compositeae)*

विवरण :

आर्टीमीशिया मध्य एशिया और यूरोप मूल का पौधा है। लेमिन आर्टीमीशिया भारत में प्राकृतिक रूप से नहीं पाया जाता है परन्तु भूमि एवं जलवायु को दृष्टिगत रखते हुए भारत के विभिन्न भागों में जैसे मध्यप्रदेश, गुजरात, उत्तर प्रदेश आदि में सफल खेती की जा सकती है। इसका उपयोग चीन में आर्टीमिसिन दवा बनाने में प्रयोग किया जाता है। जो कि चीन में पायी जाने वानी फेब्रिल बीमारी के उपचार में बहुत उपयोगी है। इसके पौधे में मलेरिया रोधी गुण पाये जाते हैं। इसका कोई कुप्रभाव .. तक ज्ञात नहीं है।

प्राप्ति स्थान :

आर्टीमीशिया भारतीय मूल का पौधा नहीं है। लेकिन भारत में सर्वप्रथम यह पौधा केन्द्रीय औषधीय एवं संगधीय पादप संस्थान (सीमैप), लखनऊ द्वारा 1986 में रायल बॉटेनिकल गार्डेन, इग्लैण्ड से लाया गया था।

औषधीय उपयोग :

आर्टीमीशिया के पौधे का औषधीय उपयोग विशेषकर मलेरिया के उपचार में किया जाता है तथा यह कैंसररोधी गुणों के कारण कैन्सर के उपचार में भी उपयोग में लाया जाता है।

मुख्य रासायनिक अवयव :

आर्टीमीशिया में मुख्य अवयव इसके तने और सूखी पत्तियों से 'आर्टीमिसिन' नामक रसायन प्राप्त किया जाता है जिसकी मात्रा 0.01 से 1.0 प्रतिशत तक पायी जाती है लेकिन इसके तने की अपेक्षा पत्ती से 10 गुना अधिक आर्टीमिसिन प्राप्त होता है।

कृषि तकनीक :

भूमि एवं जलवायु :

आर्टीमिशिया की खेती के लिए उपयुक्त मिट्टी बलुई दोमट एवं दोमट मिट्टी सर्वोत्तम है। इसकी खेती हेतु अच्छे जल निकास की व्यवस्था आवश्यक है क्योंकि यह पौधा सूखे में अच्छी तरह से पनपता है। वैसे तो इसकी खेती उष्ण कटिबंधीय जलवायु में आसानी से खेती की जा सकती है। इसकी खेती के लिए तापमान 35 डिग्री से. से 40 डिग्री से. तक उपयुक्त रहता है।

प्रजातियाँ :

सी.आई.एम., आरोग्य, जीवन रक्षक, सुरक्षा एवं आशा आदि उन्नत प्रजातियां सीमैप, लखनऊ द्वारा निकाली गयी है।

Scanned by CamScanner

बुवाई एवं रोपण विधि :

आर्टीमीशिया की फसल की बुवाई बीज द्वारा की जाती है। इसकी बुवाई 15 दिसम्बर से 15 जनवरी के मध्य नर्सरी डालकर 2 माह बाद पौधों में 8–10 पत्तियां निकल आने पर नर्सरी से पौधों को खेत में 50 x 30 सेमी. की दूरी पर रोपित कर दिया जाता है। पौधों का रोपण फरवरी के तीसरे सप्ताह से मार्च के प्रथम सप्ताह तक कर सकते हैं।

आर्टीमीशिया की नर्सरी तैयार करने के लिए निम्न बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए। क्यारियाँ उभरी हुई, वर्मीकम्पोस्ट या गोबर की सड़ी हुई खाद मिलाकर समतल कर बीज डालकर नर्सरी तैयार कर लेते हैं। इसके बीज छोटे होने के कारण नर्सरी के लिए 50 ग्राम बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है। इसके बीज छोटे होने के कारण बीज में राख अथवा बालू में मिलाकर हल्की परत से फैलाकर डाल दिया जाता है। इसके बाद नमी बनाये रखने के लिए हजारे से हल्की सिंचाई की आवश्यकता बीज अंकुरित होने तक रहती है।

खाद एवं उर्वरक :

आर्टीमीशिया की फसल के लिए 10–15 टन अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद या वर्मी कम्पोस्ट खेत की तैयारी के समय भूमि में डालकर अच्छी तरह से मिला देनां चाहिए। इसकी फसल में नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश मृदा के अनुसार अर्थात् बलुई दोमट मृदा में 150:50:50 किग्रा. तथा अन्य मृदाओं में 80:40:40 किग्रा. की दर से उर्वरक का आवश्यकतानुसार प्रयोग करना चाहिए। फासफोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा अंतिम जुताई के पूर्व खेत में डालकर जुताई कर देनी चाहिए। नाइट्रोजन की मात्रा 3 बार में देनी चाहिए, पहली बार बुआई के समय, दूसरी बार दाना बनते समय तथा तीसरी बार कटाई के तुरन्त बाद डालना चाहिए।

सिंचाई :

आर्टीमीशिया की फसल में नमी बनाये रखने के लिए ग्रीष्म ऋतु में 10–15 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए जिससे खेत में नमी बनी रहे। फसल के पकने तक लगभग 5–6 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है। खेत में जलभराव नहीं होना चाहिए क्योंकि यह फसल जल भराव के प्रति अत्यन्त संवेदनशील है।

खरपतवार नियंत्रण :

आर्टीमीशिया में सदैव नमी बनी रहने के कारण खरपतवारों का प्रकोप अत्याधिक होने के कारण इसकी फसल को खरपतवारों से नियंत्रण हेतु निराई–गुड़ाई की अत्याधिक आवश्यकता पड़ती है। इसकी फसल बोने के 20 दिन के पश्चात् पहली निराई करना अतिआवश्यक है क्योंकि इस अवस्था में आर्टीमीशिया के पौधें छोटे होने के कारण खरपतवार उनकी वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। इसके पौधे बड़े हो जाने पर खरपतवारों को कम पनपने देते हैं, जिससे बाद में अधिक निकाइयों की आवश्यकता नहीं पडती है। आर्टीमीशिया की फसल में 3–4 निराई–गुड़ाई की आवश्यकता पड़ती है।

कीट एवं व्याधियाँ :

आर्टीमीशिया की फसल पर अभी तक कोई कीट एवं बीमारी का प्रकोप नहीं देखा गया है परन्तु वर्षा काल में कभी–कभी लिटिल लीफ की बीमारी का असर पाया गया है। इसके साथ ही जहां पर दीमक का प्रकोप अधिक पाया जाता हो वहां पर सिंचाई के साथ क्लोरोपायरीफॉस दवा का प्रयोग करना चाहिए।

Scanned by CamScanner

फसल कटाई :

आर्टीमीशिया के पौधों को हरी अवस्था में ही काटना उचित रहता है। क्योंकि उस समय पत्तियों एवं तनों में 'आर्टीमिसिन' की मात्रा लगभग 90 प्रतिशत होती है। फसल की वर्ष भर में तीन कटाइयां की जाती है। पहली कटाई जून माह में, दूसरी कटाई अगस्त माह के प्रथम सप्ताह में एवं तीसरी कटाई अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में की जाती है। इस फसल के पौधे 1.5 मी. लम्बाई के होते हैं जिसकी कटाई 70 सेमी. ऊँचाई से करते हैं। नीचे के भाग में तीन चार शाखायें छोड़ दी जाती हैं। द्वितीय तथा तृतीय कटाई में भी यही तरीका अपनाया जाता है। यदि अंतिम कटाई करनी है तो जमीन की सतह से सम्पूर्ण पौधा काटकर नीचे के कठोर भाग को जलाऊ लकड़ी के रूप में प्रयोग कर लेते हैं। कटाई के बाद फसल को छाया में सुखाया जाता है। जिससे की 8–10 प्रतिशत नमी बरकरार रहे। सूखी पत्तियों को एकत्र कर तेल निकालने के प्रयोग में लाया जाता है।

आय–व्यय :

आर्टीमीशिया की खेती पर होने वाली अनुमानित लागत एवं [illegible]ा आर्थिक ब्योरा (प्रति एकड़)

क्रम सं.	विवरण	व्यय (रुपये)
(क)	**लागत**	
1.	भूमि की तैयारी एवं ले आउट बनाने पर व्यय	2500.00
2.	खाद एवं उर्वरक पर व्यय	4500.00
3.	बीज (50 ग्रा.) पर व्यय	500.00
4.	नर्सरी एवं पौध रोपण पर व्यय	4500.00
5.	सिंचाई पर व्यय	3000.00
6.	निराई–गुड़ाई पर व्यय	6000.00
7.	कटाई पर व्यय	5000.00
8.	फसल को सुखाकर थ्रेसिंग पर व्यय	3000.00
9.	अन्य खर्चे	1000.00
	कुल लागत :	**30,000.00**
(ख)	**कुल प्राप्तियां**	
	4– 5 कुन्तल सूखा शाक दर रु. 1500/– प्रति कु. (औसतन उत्पादन : 4 कुन्तल)	60,000.00
	योग :	**60,000.00**
(ग)	**शुद्ध लाभ (60,000.00 – 30,000.00) =**	**30,000.00**

Scanned by CamScanner

बच

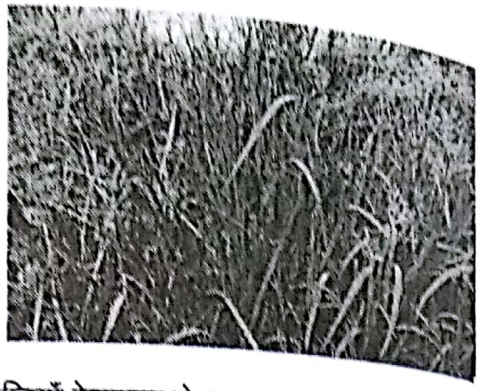

हिन्दी नाम – बच

वैज्ञानिक नाम – एकोरस कैलेमस
(Acorus calamus)

पादप कुल – एरेसी

विवरण :

बच का तना राइजोम, बहुशाखित व भूमिगत होता है। पत्तियाँ रेखाकार से भालाकार नुकीली मोटी, मध्य शिरा युक्त होती हैं । इसका पुष्पक्रम 4.8 से.मी. का स्पेडिक्स होता है इसके फूल हरापन लिये हुये होते हैं और इसके फल लाल तथा गोल होते हैं। इसका पौधा एक वर्षीय होता है। इसकी पत्तियां रेखाकार से भालाकार, नुकीली, मोटी मध्यशिरा युक्त होती है।

प्राप्ति स्थान :

बच का पौधा पूरे भारतवर्ष में पाया जाता है, मुख्यतः बच मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, उत्तर प्रदेश तथा उत्तरांचल आदि प्रदेशों में पाया जाता है।

औषधीय उपयोग :

बच के राइजोम गैस्ट्रिक, श्वास रोगों, बदहजमी, दस्त, मूत्र रोग, गर्भ रोगों, हिस्टीरिया, मानसिक तनाव, यकृत, गर्भ व श्वास रोग तथा खाँसी आदि रोगों के निदान में उपयोग किया जाता है। बच्चों की जन्म घुट्टी एवं धान को बचाकर रखने के लिए भी यह उपयोगी है। बच अग्निमांध, आंत्र शूल, विषमज्वर, रक्तदाब तथा श्वसन किया में न्यूनता लाती है। कास, कण्ठरोग, जीर्ण अतिसार, आध्मान तथा अश्मरी में प्रयोग होता है। यह औषधि मेध्य, पेशी विश्राम तथा अंगघात जैसे रोगों में उत्तम औषधि है, इसके सेवन से मेधाशक्ति बढ़ती हैं। इसका सेवन दूध अथवा मधु के साथ ज़्यादा दिनों तक करने से ही लाभ होता है। खांसी एवं श्वास में वमन कराने के लिए अधिक मात्रा में जल एवं नमक के साथ प्रयोग किया जाता है।

मुख्य रासायनिक अवयव :

इसके भूमिगत कांड में फ्लेवॉन, सुगंधित उड़नशील तेल, जिसमें ऐसारॉन तथा बीटा–ऐसारॉन, कैलामिनॉल, कैलामीन, कैलामिनोन, युजीनॉल, कैंफीन, अल्प मात्रा में अम्ल (पामीटिक, हेप्टीलिक, ब्यूटरिक अम्ल), स्टार्च, गोंद, टैनिन तथा कैल्सियम ऑक्सेलेट पाये जाते हैं। इसमें पाइनीन आदि तत्वों के साथ–साथ एकोरिन नाम का चिपचिपा गाढ़ा पदार्थ एवं ग्लाइकोसाइड तत्व म्यूसिलेज आदि भी पाये जाते हैं।

कृषि तकनीक :

भूमि एवं जलवायु :

बलुई, दोमट मिट्टी के साथ जहाँ सुनिश्चित सिंचाई व्यवस्था हो या पानी खड़ा रहता हो उपयुक्त होती है। तापमान 10° से 45° सेंटीग्रेड व अच्छी वर्षा वाला क्षेत्र उपयुक्त है, वर्षा के पहले भूमि को 2–3 बार अच्छी तरह जुताई कर लेनी चाहिए।

Scanned by CamScanner

बुवाई :

बच के राइजोम को बरसात शुरू होते ही जून–जुलाई में लगाते हैं. राइजोम में नये अंकुरण होने पर इन राइजोम को छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर इनका रोपण करते हैं. इन टुकड़ों को 30 x 30 सेमी. के अन्तराल पर दलदली एवं नम भूमि में लगाते हैं।

इस प्रकार एक एकड़ में 44000–45000 पौधे लगते हैं यदि भूमि गीली एवं दलदली नहीं हो तो रोपाई के तुरन्त बाद आवश्यक रूप से पानी देना चाहिए इसकी वृद्धि दर बहुत अच्छी होती है तथा दूसरे दिन ही पौधे में वृद्धि दिखाई पड़ने लगती है।

खाद एवं उर्वरक :

8–10 टन अच्छी गोबर की खाद प्रति एकड़ की दर से खेत में अन्तिम जुताई के समय भूमि में मिला देनी चाहिए।

सिंचाई :

बच को पानी की अत्यधिक आवश्यकता होती है. इसीलिये इ...। खेती दलदली भूमि में की जाती है 2–3 दिनों के अन्तराल में इसे पानी देते रहना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण :

बच की अच्छी फसल हेतु खरपतवार नियन्त्रण तथा ज़मीन में वायु संचारण के लिए समय–समय पर आवश्यकतानुसार निराई–गुड़ाई करते रहना चाहिए।

कीट एवं व्याधियाँ :

बच प्रायः रोग व कीटों से मुक्त रहता है परन्तु कभी–कभी इसमें मिलीबग कीट का प्रकोप देखा गया है इसके लिए 1 मिली. मिथाईल पैराथियान प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव कर देना चाहिए।

फसल कटाई :

बच की पत्तियाँ 8–9 माह बाद मार्च–अप्रैल माह में पीली पड़ने लगती हैं तथा सूखने लगती हैं तब इसके पौधे को जड़ समेत जमीन से खोद लेते हैं यदि खेती बड़े स्तर से की जा रही है तो हल का प्रयोग भी किया जा सकता है, राइजोम को पत्तियों से अलग काट लेते हैं, राइजोम को पानी में बिना धोये साफ कर लेते हैं तथा छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर छायादार जगह में फैलाकर सुखाया जाता है ताकि तेल की मात्रा उड़कर कम न हो।

उपज :

एक एकड़ में लगभग 10–12 कु. सूखा राइजोम प्राप्त होता है।

मण्डारण :

सूखी राइजोम के टुकड़ों को बोरों में भरकर सुरक्षित स्थान पर रखना चाहिए अथवा बोरों में भरकर विक्रय हेतु भेज देना चाहिए।

Scanned by CamScanner

आय–व्यय :

बच की खेती पर होने वाली अनुमानित लागत एवं प्राप्ति का आर्थिक ब्योरा (प्रति एकड़)

क्रम सं.	विवरण		व्यय (रुपये)
(क)	लागत		
1.	खेत की तैयारी पर व्यय		1500.00
2.	रोपण सामग्री		1200.00
3.	बुवाई की मजदूरी		1800.00
4.	खाद एवं उर्वरक		1500.00
5.	सिंचाई एवं निराई–गुड़ाई पर व्यय		2200.00
6.	खुदाई की मजदूरी		1800.00
7.	अन्य खर्चे		1000.00
	कुल लागतः		11,000.00
(ख)	कुल प्राप्तियां		
	सूखे कन्द (10–12 कुन्तल) दर रुपये 25/– प्रति किग्रा.	25,000.00	
		योग :	25,000.00
(ग)	शुद्ध लाभः	25,000.00 – 11,000.00 =	14,000.00

नोटः– आय व्यय वर्ष 2010–11 के बाजार भाव के अनुसार

Scanned by CamScanner

खेती- किसानी , पशुपालन, बागवानी, गृहविज्ञान सम्बन्धित विषयों पर जानकारी के लिए सम्पर्क करें

डॉ० आनन्द सिंह	कार्यक्रम समन्वयक	8765628585
डॉ० अम्बरीश सिंह यादव	शस्य वैज्ञानिक	9452820176
डॉ० दया शंकर श्रीवास्तव	पादप सुरक्षा वैज्ञानिक	8004931020
डॉ० आनन्द सिंह(द्वितीय)	पशु पालन वैज्ञानिक	7376970259
डॉ० श्रीमती सौरभ	गृह वैज्ञानिका	9454099434
श्री मनीष कुमार बिसेन	मृदा वैज्ञानिक	9473536263
श्री शैलेन्द्र कुमार सिंह	प्रसार वैज्ञानिक	7376905268
डॉ० योगेन्द्र प्रताप सिंह	प्रक्षेत्र प्रबंधक	9565929686
श्री सचिन प्रताप तौमर	कार्यक्रम सहायक	7599059606

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें

कृषि विज्ञान केन्द्र–II

ग्राम कटिया, पोस्ट भानपुर वि0ख0 बिसवाँ

जनपद– सीतापुर 261145 (उ0प्र0)

सम्पर्क सूत्र– 8765628585, 7376905268, 8004931020, 7376970259, 9452820176, 9473536263,

Scanned by CamScanner